मूर्त्तिकार

Mūrtti kār

बलवन्त गार्गी

Balwant Gārgi

Drama

Attarchand kapoor & Sons.

अत्तरचन्द कपूर ऐण्ड सन्ज़

काश्मीरी गेट, दिल्ली।

Kashmiri Gate, Delhi

मूल्य १-४-०

(Rs 1/4/- pp. 75)

द्वितीयावृत्ति २०००

मूल्य १।)

Printed at Kapur Printing Press Delhi, by L. Guran Ditta Kapur
and
Published by Uttar Chand Kapur & Sons., Delhi and Ambala.

मूर्त्तिकार

जन-कलाकारों को

जो

संघर्ष की छैनी से आज की अनगढ़ समाज-शिला को
काट-छाँट कर सुघड़ मूर्त्ति बनाने में संलग्न हैं ।

परिचय

हिन्दी-नाटक के क्षेत्र में पंजाबी के लब्ध प्रतिष्ठ नाटककार बलवंत गार्गी का पदार्पण अपने में विशेष महत्व रखता है। पंजाबी साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। अपनी मौलिक तथा यथार्थ-वादी कथाओं द्वारा इन्होंने पंजाबी के नाटक-साहित्य को काफी समृद्ध किया है। शैली का सौष्ठव, पात्रों की स्वाभाविकता, वर्णन की यथार्थता, और संवादों की चुस्ती-नाटक कला सम्बन्धी श्री बलवंत की ये विशेषतायें हिन्दी नाटक में नये जीवन का संचार करेंगी, इसकी मुझे पूर्ण आशा है।

अभी तक उर्दू से ही हिन्दी की ओर लेखक आते रहे हैं, जो उर्दू के गुणों को अपने साथ लाकर हिन्दी के क्षेत्र को विविधता और सजीवता प्रदान करते रहे हैं। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के फलस्वरूप पंजाबी भाषा के लेखकों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ है। पंजाबी भाषा के अपने गुण हैं। उसके खुरदरेपन में एक अनोखी जीवन शक्ति है और उसे धरती का सम्पर्क प्राप्त है। वह जीवनशक्ति और धरती का वह सम्पर्क बलवंत गार्गी अपने नाटकों द्वारा हिन्दी के क्षेत्र में ला रहे हैं। श्री बलवंत को रंगमंच की कला का पूरा पूरा ज्ञान है। इनके नाटक नगर और गाँव के रंग-मंचों पर बड़ी सफलता से अभिनीत हुए हैं। इन्होंने रंगमंच की सीमाओं और क्षमताओं का अपने नाटकों में पूरा पूरा लाभ उठाते हुए नाटकों का स्वयं निर्देशन भी किया है।

श्री बलवन्त गार्गी के नाटकों के पात्र मुख्यतया गाँव ने आते हैं—चमार, मीरासी, भंगी, खटिक, पटवारी, नम्बरदार, जमींदार आदि, परन्तु प्रस्तुत नाटक मर्तिकार एक नये ढंग का नाटक है। इसमें मूर्तिकार जयदेव बुर्जुवा कला के पतन काल का प्रतिनिधि है, यद्यपि वह अपने को प्रगति शील समझता है।

उसकी मूर्तिकला वह बर्फ–घर है जिस में वह बुर्जुवा समाज की सड़ी गली लाश को सुरक्षित रखना चाहता है। उसकी आँखों पर रोमानी रंगीन चश्मा है जिसके सहारे वह कुरूपता में भी सुन्दरता देखता है, यथार्थता को आँखों से ओझल कर अपनी कल्पना के रंग महल में विराजता है।

सुवीरा का दृष्टिकोण वास्तविक है। वह जीवन की वास्तविकताओं को पहचानती है। वह सताई और लुटी हुई मानवता के साथ है। वह धरती की लुटी हुईउपजाऊशक्ति वापिस माँगती है, नीड़ से गिरे शावक के लिये उसका नीड़ माँगती है, और माता की छाती से विलग किए शिशु के लिए उसकी छाती से माँगती है।

नाटकीय घटना क्रम में ऐसी स्थिति आती है जब जयदेव और सुवीरा के दृष्टिकोणों में टक्कर होती है। जयदेव अपने कल्पना-विलास की वास्तविकता परखता है और उसे अपने बनाये भ्रम सागर में वास्तविक जीवन, नये जीवन के छोटे २ टापू उभरते दीख पड़ते हैं।

दृश्य विभाजन, चरित्र-चित्रण और घटनाक्रम बहुत ही सजीव, सुन्दर, निखरा हुआ और कलात्मक है।

७ अगस्त, १९४६ —उपेन्द्रनाथ अश्क

1954

नए आधार पर नई शक्ति के साथ
समाज का पुनर्जन्म हो रहा है।

—रोमां रोलां

स्थान — दिल्ली

काल — वर्तमान

पहला अंक

प्रोफेसर बत्रा की कोठी

अक्टूबर १९४८ की एक शाम को आठ बजे

दूसरा अंक

पहला दृश्य

जयदेव का स्टूडियो, दो दिन बाद

दूसरा दृश्य

बीस दिन बाद

तीसरा अंक

पहला दृश्य

प्रोफेसर बत्रा की कोठी

२२ नवम्बर १९४८ की शाम

दूसरा दृश्य

जयदेव का स्टूडियो, दो घण्टे बाद

नाटक के पात्र

प्रोफेसर बत्रा

सुवीरा

जयदेव

शान्ता

मनमोहन

मिस्टर मेहता

मिसेज़ मेहता

सेठ गोविन्द प्रसाद

रूपा

रूपा की मा

नत्थू

नौकर आदि

मूर्त्तिकार

प्रथम अंक

प्रोफेसर बत्रा की कोठी का आधुनिक ढंग से सजा हुआ बड़ा कमरा।

स्टेज की दाईं ओर बीच में अंगीठी है, जिसकी कार्निस पर दो फोटो रखे हैं। अंगीठी के सामने एक छोटा सा मोढ़ा है—तनिक इधर को पाँव बत्तियों (*footlights*) की ओर आराम कुर्सी पर बैठे प्रोफेसर बत्रा एक दैनिक पत्र पढ़ रहे हैं। प्रोफेसर बत्रा विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त अध्यापक हैं—आयु पचपन वर्ष, सिर के बाल छोटे किन्तु दाढ़ी टैगोर की भांति लम्बी और सफेद जो उनके तेजस्वी मुँह पर बहुत भली लगती है, आँखों पर ऐनक, खुला कुर्ता और धोती तथा चप्पल। आदर्शवादी प्रोफेसर जीवन की ऊबड़खाबड़ घाटियाँ पार करके अब सरल और कोमल सत्य पर पहुँच गये हैं। उनकी जीवन ज्योति अब एक ऐसी अचल शिखा है जिसका अस्तित्व जलसे और पार्टियों में गम्भीर और निःस्वार्थ प्रेम के प्रकाश की सुनहरी किरणें बिखेरता है।

पिछली ओर की दीवार में एक दरवाजा है जो बरामदे में खुलता है। बाईं ओर की दीवार में एक दरवाजा है जो एक और कमरे में खुलता है।

बाईं ओर पिछली दीवार के तनिक इधर को एक लम्बी खाना खाने की मेज बिछी है, जिस के इर्द गिर्द आठ कुर्सियां जोड़ कर रखी हुई हैं. तीन दायें तीन बायें, और दो आमने सामने। मेज पर छुरियाँ, काँटे, गिलास और फूलदान सजे रखे हैं, और मिट्टी के १६ दीपक हैं जिनको सुवीरा एक एक करके जलाती है। आज प्रोफेसर की उन्नीस वर्षीया बेटी शान्ता की वर्षगांठ है। सारा कमरा जगमगा रहा है।

सुवीरा दीपक जलाते हुए रुक कर नौकर को आवाज देती है—
"पूरन! पूरन!! दियों के लिए तेल और ले आ" फिर आकर दीपकों को ठीक करने लगती है। सुवीरा बाईस वर्षीय नवयुवती है, बाल पीछे की ओर कढ़े हुए, सीधी मांग, सलवार कमीज में बहुत फुर्तीली लग रही है, परन्तु यह स्फूर्ति उसकी सौम्यता को कम नहीं करती। उसकी आँखों में गहराई है—एक तैरती हुई अद्भुत मिठास, चिन्ता की घनी भावुकताओं में बिघली हुई चेतना।

स्टेज के बीच में एक सोफ़ा रखा है और दो स्टूल। दाएँ कोने में अखरोट की लकड़ी की अठकोनी छोटी मेज पड़ी है, जिस पर प्रोफेसर की स्वर्गीया पत्नी का सफेद पत्थर का धड़

रखा हुआ है। पास ही एक मंझले साइज़ का बुक-शैल्फ़ है, जिस पर किताबों की तीन कतारें ऊपर नीचे करके चुनी हुई हैं।

सुवीरा—(दीपक गिनते हुए) नौ, दस...ग्यारह...अठारह... उन्नीस, पूरे उन्नीस दिये लगा दिये हैं।

प्रोफेसर—(समाचार पत्र पढ़ते हुए चौंक कर) हैं! बम्बई के पास तूफान में घिरा हुआ जहाज़ पहाड़ी से टकरा गया और सब यात्री मर गये। उफ ! जहाज़ की यात्रा बहुत भयंकर है। प्रकृति की शक्ति अपार है। अभी तक मानव प्रकृति पर विजय न पा सका।

सुवीरा—पूरे उन्नीस दिये लगा दिये हैं।

प्रोफेसर—मोमबत्तियाँ नहीं ?

सुवीरा—नहीं, मोमबत्तियाँ पच्छिमी रिवाज है। मुझे दिये अच्छे लगते हैं। शान्ता आयेगी तो चकित रह जायेगी। उसे मालूम ही नहीं कि मैं उसकी वर्षगाँठ पर दियों से मेज़ सजा रही हूँ।

प्रोफेसर—शान्ता अभी तक लौटी नहीं ?

सुवीरा—वह अभी काहे को आयेगी ?

सुवीरा अंगीठी पर रखी एक बोतल

से सिरिंज निकाल कर सुई फिट करती है और एक शीशी से दवा भरती है।

प्रोफेसर—उसकी वर्षगाँठ है और उसे कोई चिन्ता ही नहीं। उसे यहाँ होना चाहिये था।

सुवीरा—मनमोहन साथ हो और फिर शॉपिंग—साढ़े आठ से पहले क्या लौटेगी!

प्रोफेसर—शॉपिंग की बहुत शौकीन है, बिल्कुल अपनी माँ जैसी। मेरी आधी आमदनी तो किताबों और उसकी माँ के कपड़ों पर ही खर्च हो जाती थी।

सुवीरा—(सिरिंज पकड़ कर) आस्तीन ऊपर कीजिए।

प्रोफेसर—क्यों ?

सुवीरा—इन्जेक्शन न लगेगा ? भूल गये ?

प्रोफेसर—मैं...भूल ही गया था। जब से तू आई है—कुछ अधिक ही भूलने लगा हूँ। तूने तो आकर मेरी आदत ही बिगाड़ दी। तेरे बिना मेरा मन न लगेगा। तुझे अब मैं वापिस न जाने दूँगा।

सुवीरा—प्रोफेसर साहब आपने मुझे शरण दी है।

प्रोफेसर—शरण काहे की ? तू मेरी सबसे लाडली शिष्या है। यह घर तेरा अपना ही है। यह तो तेरी भूल थी, जो आज तक तू मेरे पास नहीं आई।

सुवीरा—अब आ गई हूँ, तो जाने का नाम ही नहीं लेती।

प्रोफेसर—देख सुवीरा, यदि तूने फिर ऐसी बात की, तो मैं तेरे हाथ से इंजेक्शन न लूँगा।

सुवीरा—मैं सदा आपकी आभारी रहूँगी।

प्रोफेसर—फिर तू धन्यवाद के चक्कर में पड़ गई। तू मेरी बेटी नहीं क्या ? भूल गई जब तू और शांता इकट्ठी पढ़ा करती थीं। बचपन में तू कितनी बार मेरे यहाँ आकर ठहरी है। कैसे भाग कर टाँगों में चिपट जाती थी।

सुवीरा—उस समय पिता जी जिन्दा थे, और मैं पढ़ती थी। मैं पिता जी की लाडली थी और सुन्दर माता जी का। हम दोनों बहन भाइयों ने पिताजी के बहुत लाड देखे। माताजी की मृत्यु के पश्चात् पिताजी आप ही की भांति अकेले रहते थे—बिल्कुल अकेले—हस्पताल की ड्यूटी देने के बाद घर आकर भी बीमारों की देख भाल में ही

लगे रहते, इंजेक्शन लगाना मैंने उन्हीं से सीखा है।

प्रोफेसर की बाँह ऊपर करके वह इन्जेक्शन लगाती है।

प्रोफेसर—ओह ! पूरी डाक्टरनी है।

वह इंजेक्शन का सामान बोतल में बंद करके अंगीठी के ऊपर रख देती है, और प्रस्तर मूर्त्ति के पास जाकर खड़ी हो जाती है।

सुवीरा—बिल्कुल माता जी के समान है। मुझे बहुत अच्छी लगती है। किसने बनाई है ?

प्रोफेसर—जयदेव ने !

सुवीरा—जयदेव ?

प्रोफेसर—यहाँ का प्रसिद्ध मूर्त्तिकार।

सुवीरा—मूर्त्तिकला में मेरी सदा रुचि रही है। बचपन में जब मैं बहुत छोटी थी; तब भी बालू के गीले ढेरों पर बैठकर मैं पैरों पर रेत थपक कर बुर्ज और घर बनाती, गीली मिट्टी के लड्डू, पेड़े और खिलौने बनाती। मुझे याद है एक बार मैंने गूजरी बनाई, किंतु मैं उसकी आँखें न बना सकी।

प्रोफेसर—(हँसते हुए) इसी शौक को पूरा करने के लिये तो तेरे पिता ने तुझे भारत भर के ऊँचे कला-भवनों में शिक्षा दिलाई; मोहन्जोदड़ो, एलीफेंटा, अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में घूमने की खुली छुट्टी दी।

सुवीरा—यह सब आप ही की कृपा से हुआ, नहीं मुझे कौन जाने देता।

प्रोफेसर—किंतु मुझे यह बात समझ में न आई कि फिर तू मजदूर बस्ती में क्यों चली गई ?

सुवीरा—क्या करती ? दंगों के बाद जब लाहौर से आये, तो दोनों भाई, बहन कुछ दिन शरणार्थी कैम्प में रहे। वह अंधेरगर्दी देखी कि क्या बताऊँ, पर यह तो अब बहुत साधारण सी बात है, हर किसी ने यह अनहोनी देखी है।

वह प्रोफेसर के निकट स्टूल पर बैठ जाती है।

प्रोफेसर—सुन्दर अब कहाँ है ?

सुवीरा—उसके बारे में मैंने पहले आपको नहीं बताया। सोचती थी आपको बुरा न लगे।

प्रोफेसर—क्यों ?

सुवीरा—उसने मिल में नौकरी कर ली।

प्रोफेसर—मिल में ? एम० ए० करने के बाद ?

सुवीरा—हाँ, 'हर गोपाल क्लाथ' मिल्ज़ में। वहाँ उसका काम था मज़दूरों को प्रसन्न रखने के नये नये तरीके सोचना। इसी के उसको ढाई सौ रुपये मासिक मिलते थे। मज़दूरों में रह कर उसने जाना कि जब तक मिल के सेठ उनकी मेहनत पर मोटे हो रहे हैं, इन मज़दूरों के अथाह दुख और रोग को मनोवैज्ञानिक प्रसन्नता का कोई इन्जेक्शन दूर नहीं कर सकता। कुछ समय से सेठ और मज़दूरों में महंगाई भत्ते के लिये झगड़ा चल रहा था। हड़ताल हुई, सुन्दर हड़तालियों के साथ था। (लम्बी साँस लेकर) उसने मेरे लिये बहुत से कष्ट सहन किये। यह नौकरी भी उसने मेरे ही लिये की। उसे मेरी बहुत चिन्ता थी। किंतु जब मैं ने बस्ती के स्कूल में मज़दूरों के बच्चों को पढ़ाना आरम्भ किया, तो उसे मेरी चिंता न रही।

प्रोफेसर— फिर ?

सुवीरा—हड़ताल तोड़ने के लिये सेठ ने पूरे ज़ोर से काम लिया। कुछ मज़दूरों को फोड़ लिया। तीन मज़दूर नेताओं को हटा दिया और..........और सुन्दर पर एक झूठा मामला चलवा दिया।

प्रोफेसर—झूठा मामला?

सुवीरा—हाँ! हमारे घर अफीम का गोला फैंकवाकर उसे अफीम की नाजायज़ तिजारत के जुर्म में फांसने की चेष्टा की और उसके नाम वारंट आगये। उस रात सुन्दर घर छोड़ कर निकल पड़ा, और मैं इधर आप के पास आगई।

आँसू पोंछती है।

प्रोफेसर—दुत् पगली! रोती क्यों है?

सुवीरा—नहीं, यह बहन का हृदय है। सुन्दर भैय्या की याद आ गई, बहन के प्यार की एक छोटी सी आह। ऐसे शुभ दिन मुझे रोना नहीं चाहिये था। मैं..............

वह मुस्कराने की चेष्टा करती है। बायें द्वार से पूरन तेल की कुप्पी लिये आ रहा है।

पूरन—लीजिये बीबी जी, आपने तेल मंगवाया था।

सुवीरा—(उठकर) तुमने दियों में तेल बहुत कम डाला है। इन्हें अभी कम से कम दो घंटे और जलना है।

वह कुप्पी में से दीपकों में तेल डालती है। पूरन जाता है। वह एक बुझे हुए दीपक को दूसरे के साथ लगा कर जलाती है और प्रोफेसर के पास ले जाती है।

सुवीरा—कई बार मुझे इस बात पर हैरानी होती है कि एक दिया दूसरे को प्रकाश देता है, किंतु इसके अपने प्रकाश में कोई कमी नहीं होती—मैं दिये जलाती हुई यही सोच रही थी। उन्नीस के उन्नीस दिये एक दिये से जल उठे।

सामने बरामदे वाले द्वार पर खट-खट। सुवीरा दीपक हाथ में लिये द्वार की ओर बढ़ती है।

प्रोफेसर—(कुर्सी पर से ही) आइये, आइये।

द्वार खुलता है, और जयदेव अंदर आता है। जयदेव तीस वर्ष का लम्बा और पतला युवक है, बाल लम्बे और पीछे की ओर गिरे हुए

प्रोफेसर—आओ, आओ जयदेव ! मैंने तो दस्तक से ही पहचान लिया था······सुवीरा······यह हैं जयदेव, और यह हैं सुवीरा. मेरी शिष्या।

जयदेव—नमस्ते।

सुवीरा—नमस्ते।

सुवीरा मेज पर दीपक रखकर लौटती है। जयदेव मोढ़े पर बैठ जाता है।

प्रोफेसर—बहुत व्यस्त रहते हो क्या ?

जयदेव जी हाँ, प्रदर्शिनी के लिये भूखी लड़की की मूर्त्ति बना रहा हूँ।

प्रोफेसर भूखी लड़की की मूर्त्ति ?

जयदेव—जी !

प्रोफेसर—माडल कहाँ से लिया ?

जयदेव—मन्दिरों, सरायों और मजदूर-बस्तियों में ढूँढता फिरा। आखिर मजदूर-बस्ती का चक्कर लगाते हुए मुझे एक भूखी कुरूप लड़की मिली। बिल्कुल पत्थर जैसी ! पत्थर जैसी ही उसकी स्थिर

और निर्जीव आँखें, पत्थर जैसी ही खुरदरी उसकी त्वचा—और उभरी हुई हड्डियाँ और नसें।

प्रोफेसर—सुन्दर को छोड़ कर तुम कुरूप के उपासक कब से बन गये ?

जयदेव--कुरूपता में भी सौंदर्य है, किंतु जन-साधारण को उस सौंदर्य का बोध नहीं। कई बार सौंदर्य का अंतिम रूप ही कुरूपता होती है।

सुवीरा—क्या आप कुरूपता के उपासक हैं ?

जयदेव—लोग कुरूपता के सौंदर्य को नहीं जानते। प्रत्येक कला के प्रति जन-साधारण की रुचि धीरे धीरे बनाई जाती है। सदियों तक जिस कलात्मक अनुभूति की छाया तले लोगों के विचार पनपते हैं, कुछ समय के पश्चात् वह विचार मानवीय मस्तिष्क में पत्थर की लकीर बन जाते हैं। वह अभिरुचि जिसे हम कलात्मक अभिरुचि कह कर प्रसन्न होते हैं, वास्तव में एक बौद्धिक रूढ़ि है, मस्तिष्क के भीतर जमी हुई काई। प्रत्येक कलाकार आकर नये सिरे से इस अभिरुचि

को खुरचता है और उसका शृंगार करता है—और इस तरह कला के प्रति एक नये दृष्टिकोण की स्थापना करता है। वह अपने मस्तिष्क में उठते हुए भावों को स्थूल रूप देता है। मूर्त्तिकार के मन में उस मूर्त्ति का स्वरूप पहले से विद्यमान रहता है। बाहरी संसार में वह अपनी कल्पित मूर्त्ति का अस्तित्व ढूँढता है। इस भूखी कुरूप लड़की का स्वरूप मेरी कल्पना में पहले से विद्यमान् था। परन्तु जनता के बीच से मुझे इसे ढूँढ निकालना था। जनता रूपी पर्वत से इस की मूर्त्ति तराशनी थी।

सुवीरा—आप हर चीज़ को पत्थर के रूप में देखते हैं ?

जयदेव—हाँ पत्थर—एक निर्जीव पत्थर। ऐसी ही हमारी चेतना है, जिसे सृष्टि का महान मूर्त्तिकार जड़ता के विशाल पर्वत से काट रहा है। प्रत्येक वस्तु के दो रूप हैं, पत्थर और मूर्त्ति। पत्थर जड़ अवस्था और मूर्त्ति चेतन अवस्था। इस विशाल शिला-खण्ड में मुझे मूर्त्ति पहले से ही दृष्टिगोचर होने लगती है। छेनी लेकर मैं उसके अनावश्यक अंश को काट कर

फेंक देता हूँ, ताकि उसके भीतर छिपी हुई मूर्त्ति को जीवन प्रदान कर सकूँ।

सुवीरा—आप रोदें के बड़े भक्त जान पड़ते हैं।

जयदेव—हां मैं निश्चय ही उसका भक्त हूँ। वह अमर कलाकार है। मुझे उसकी मूर्त्तियों में जहाँ प्राचीन कला और संस्कृति की झलक दिखाई देती है, वहां उनमें नये समाज के उभरते आशा-द्वीप भी दृष्टि-गोचर होते हैं। वह सदियों तक हमारी कला का नेतृत्व करेगा—रोदें—और ऐप्सटाइन जिसे मैं रोदें का दूसरा रूप समझता हूँ—रौद्र रूप !

सुवीरा—रोदें का यह मत कि पत्थर का प्रत्येक टुकड़ा एक विशेष मूर्ति में ढलने के लिये, एक विशेष आकृति और भाव का रूप ग्रहण करने के लिये लालायित रहता है—क्या ठीक है ?

जयदेव—हाँ, मूर्त्तिकार पत्थर के हृदय में अँगड़ाई लेती हुई प्रतिमा को देखता है। वह पत्थर के हृदय को समझता है।

सुवीरा—आप जनता को भी विशाल शिला-खंड समझते हैं न—एक बेडौल और अनगढ़ पत्थर ?

जयदेव—हाँ।

सुवीरा—जो एक विशेष प्रकार की मूर्त्ति में अभिव्यक्त होने के लिये छटपटाती है।

जयदेव—हाँ।

सुवीरा—क्या आप इस मूर्त्ति की रूप रेखा जानते हैं ?

जयदेव—(घबराकर) क्या ?

सुवीरा—क्या आप जनता के इस रूप को, इस बिलखती छटपटाती मूर्त्ति को जानते हैं, जो जनता के अनगढ़ शिला-खण्ड में जकड़ी पड़ी है ?

जयदेव—यह व्यर्थ का वितण्डावाद है। रोदें के इस मत को खींच-तान कर हम यहाँ तक नहीं ले जा सकते।

सुवीरा—मैं समझती हूँ रोदें के इस मत का यही अभिप्राय है—उसका शाब्दिक अर्थ लगाना उसके साथ अन्याय करना है। हमें उसके अचल पत्थर जैसे निर्जीव शब्दों में से यही वास्तविक अर्थ निकालना पड़ेगा—यही एक अर्थ, क्योंकि एक वाक्य एक ही अर्थ रखता है।

जैसे कि एक पत्थर में एक ही मूर्ति अन्तर्हित रहती है। यदि पत्थर को तराश कर उस मूर्त्ति को उन्मुक्त न किया जाये, तो उस पत्थर की मृत्यु हो जाती है। हमारे बहुत से मूर्त्तिकार मूर्त्ति का निर्माण नहीं करते, बल्कि उसका विनाश करते हैं।

फैसर—पहले दिन ही क्या बहस छेड़ दी ?

सुवीरा—नहीं, मैं बहस नहीं करती, मुझे बहस अच्छी नहीं लगती। यह तो यों ही बात में बात निकल आई। बहस से कोई लाभ नहीं, बहस करते समय दोनों पक्ष अपने अपने मत को पुष्ट करने के लिये एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर युक्तियाँ पेश करते हैं। गाँठ दोनों ओर के खींचने पर और भी पक्की हो जाती है।

जयदेव—सुवीरा की बातें मनोरंजक हैं। विचारों को झकझोरती हैं—ललकारती हैं।

सुवीरा—मुझे आपकी कला के प्रति श्रद्धा है। कलाकार को साधना करते हुए, जड़ पदार्थ में प्राणों का संचार करते हुए देखने की बहुत लालसा है। जड़ को चेतन में परिवर्तित होते देखना एक अनोखी अनुभूति है।

बचपन में मैं कई बार अपनी पड़ोसिन दाई के साथ प्रसूति गृहों में गई, परन्तु कोई मुझे बच्चा जनती औरत के पास जाने न देता—जीवन से जीवन की उत्पत्ति ! क्या मैं आपको कला—साधना करते समय देख सकती हूँ ?

जयदेव—अवश्य ।

सुवीरा—मेरे आने से आपकी साधना में बाधा तो नहीं पड़ेगी ?

जयदेव—नहीं, बिल्कुल नहीं । आप जैसे सजग दर्शक मेरे कला-भवन में बहुत कम आते हैं ।

सुवीरा—प्रदर्शिनी कब है ?

जयदेव—बीस नवम्बर को ।

प्रोफेसर—एक महीना पड़ा है अभी तो ।

जयदेव—हाँ - एक महीने में मूर्त्ति तैयार हो जायेगी ।

प्रोफेसर—महीने—डेढ़ महीने में ही शांता का विवाह भी हो जायेगा ।

जयदेव—शांता कहाँ है ? दिखाई नहीं दी । इस बार मैं उसके लिये उपहार नहीं लाया । पिछली बार

उसे खड़िया मिट्टी का एक धड़ बना कर दिया था।

मोटर का हार्न सुनाई देता है।

प्रोफेसर—वह मनमोहन के साथ शॉपिंग करने गई है—बस आने ही वाली है। बड़ी लापरवाह लड़की है—यह उन्हीं की मोटर की आवाज़ है—शायद आ गये।

सुवीरा—मनमोहन की मोटर के हार्न की आवाज़ बड़ी अजीब है, डरा देने वाली आवाज़ निकलती है इसमें से, जैसे किसी मिल का भोंपू हो—झट पहचानी जाती है।

मनमोहन और शाँता सामने का बरामदे वाला दरवाज़ा खोलकर अंदर आते हैं। दोनों बड़े अच्छे वस्त्र पहने हैं। शांता की बगल में एक अत्यन्त सुन्दर फर का बटुआ है।

शांता—(अन्दर आते हुए मनमोहन से) देखा न, मैं कह रही थी, यह लोग यहाँ हमारा इन्तज़ार कर रहे होंगे।

प्रोफेसर—इतनी देर लगाई ?

मनमोहन—मैटिनी-शो देखने चले गये थे, बड़ी मज़ेदार फिल्म थी।

शांता—बिल्कुल निकम्मी।

मनमोहन—गुलज़ार के गाने बहुत अच्छे थे।

शांता—ओह ! हीरो बिल्कुल बंदर लगता था। जब हीरो और हीरोईन गाल से गाल मिलाकर गाते हैं, तो मुझे बहुत बुरे लगते हैं।

प्रोफेसर—अच्छा, बैठो, बैठो।

शांता—फ़िल्म देखने के बाद हम कनाट प्लेस चले गये—मैं बहुत-सी चीज़ें ले आई हूँ, एक बंगलौर की साड़ी का मुझे पीला शेड पसन्द था और इन्हें लाल। बस उस पर बहुत देर तक झगड़ा होता रहा—

प्रोफेसर—फिर ?

शांता—आख़िर मैं ने दोनों शेड की साड़ियाँ ख़रीद लीं।

सुवीरा—ऐसा झगड़ा तो नित्य चाहिये।

शांता—और एक यह पर्स खरीदा है—लद्दाखी लोमड़ी के फर का—सुन्दर और कोमल। अमरीका में ऐसे पर्स के दाम कम से कम सौ डालर होते, पर मैंने भला बताओ तो, कितने में खरीदा होगा ? (बटुआ दिखाकर) सिर्फ़ सत्तर रुपये में।

जयदेव—दुर्लभ वस्तु है।

शांता—हाथ लगाकर देखिये।

जयदेव—औरतों के बटुए से मुझे सदा डर ही लगता है। एक विचित्र गुप्त भेद-सा लगता है, मदारी के झोले की तरह। इसमें हर चीज़ हो सकती है।

शाँता—पर इस के अन्दर कोई चीज़ नहीं, देखिये।

प्रोफेसर—अच्छा, बेटा, जल्दी अपना सामान दूसरे कमरे में पहुँचाओ और बैठो, सभी लोग तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। अभी कुछ और मेहमान भी आने वाले हैं, मिस्टर मेहता—

मनमोहन—वह हमें बाज़ार में मिले थे। वह और उनकी मिसेज़। बस, आते ही होंगे।

शांता—(मेज़ पर सजे हुए दीपक देखकर) ओह लव्ली ! सुन्दर हैं यह ! ज़रूर यह सुवीरा की सूझ है।

मेज़ पर जाकर दीपक गिनती है और फिर नौकर को आवाज़ देती है।

पूरन !

पूरन—(दायें दरवाज़े से अन्दर जाते हुए) जी !

शांता—कार से सारा सामान लाकर कमरे में रखो, जाओ।

पूरन बरामदे वाला दरवाज़ा खोलकर बाहर जाता है । खुले दरवाज़े से मिस्टर और मिसेज़ मेहता आते हुए दिखलाई देते हैं, सभी पाश्चात्य शिष्टाचार के अनुसार उठकर उनका स्वागत करते हैं।

प्रोफेसर—आइये, आइये, इधर आइये !

मि० मेहता—नहीं, प्रोफेसर साहब, तशरीफ़ रखिये, हम इधर कहीं बैठ जायेंगे, तकल्लुफ़ की कोई ज़रूरत नहीं।

मिसेज़ मेहता सोफे पर बैठ जाती हैं।

प्रोफेसर—(परिचय कराते हुए) यह हैं श्री जयदेव—यहाँ के प्रसिद्ध कलाकार, और यह है सुवीरा, मेरी शिष्या। मनमोहन को तो आप जानते ही हैं । और यह हैं मि० मेहता, मेरे पुराने शिष्य, आजकल भाखड़ा डैम नंगल में एस० डी० ओ० हैं।

मेहता
मिसेज़ मेहता } नमस्ते !

जयदेव
सुवीरा } नमस्ते !

मि० मेहता—(प्रोफेसर से) आधी दिल्ली तो आप की शिष्य होगी। प्रोफेसर होने का सब से बड़ा लाभ यही है।

जयदेव—आप नंगल से कब आये ?

मि० मेहता—पिछले हफ्ते।

जयदेव—कुछ दिन रहेंगे आप ?

मि० मेहता—हाँ, दो महीने की छुट्टी पर आया हूँ। मैंने, आपका चित्र 'आजकल' में देखा था। आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी, मिलकर बड़ी खुशी हुई।

जयदेव—आपकी कृपा।

मनमोहन—और किसी का इन्तज़ार है क्या ?

प्रोफेसर—शायद राय साहब कृपा नारायण भी आयें। उन्होंने

कहा था कि मैं आठ बजे तक पहुँच जाऊँगा—शांता के मामा लगते हैं, इसकी माँ के धर्म भाई।

शांता—मामाजी का इन्तज़ार करना चाहिये, वे अवश्य आयेंगे।

प्रोफेसर—हाँ, उन्हें आना भी तो पन्द्रह मील से है—वहाँ उनकी ग्लास फैक्टरी है, आज वहाँ मज़दूरों की कुछ गड़बड़ थी, शायद ज़रा देर से आयें।

मिसेज़ मेहता—मज़दूर आजकल हर जगह गड़बड़ करते फिरते हैं। अपना राज हुआ है, तो दिमाग़ खराब हो गया है। अंग्रेज़ के राज में कोई चूँ तक नहीं करता था।

मेहता—सरकार इतना कुछ तो कर रही है, लेकिन लोग बहुत उतावले हो जाते हैं। विलायत में देखा था, लड़ाई के दिनों में कितना डिसिप्लिन था। लोग दूध और अंडों के बिना निर्वाह करते थे। हमारा देश भी तो आजकल एक प्रकार की लड़ाई से गुज़र रहा है—आर्थिक लड़ाई। हमारे लोग क्यों नहीं एक-दो साल तक कम खा कर गुज़र करते।

बैरा बाईं ओर से ट्रे में प्लेटें लिये अन्दर आता है और मेज़ पर रखता है।

सुवीरा—हमारे देश के लोग तो पहले ही से बहुत कम खाते हैं—हमें तो बल्कि कम खाने की बीमारी है। दुनिया में हर पाँचवाँ आदमी हिन्दुस्तानी है और हिन्दुस्तान में हर पाँचवाँ आदमी लाचार भूख हड़ताली।

मेहता—नहीं जी, यह बात नहीं। यहाँ डिसिप्लिन नहीं। भाखड़ा डैम और दूसरे कई प्रोजेक्ट खुलने पर सारा देश निहाल हो जायेगा।

मि० मेहता—जितना ये ग़रीब खाते हैं, अमीर तो उससे आधा भी नहीं खा सकते। गाँव के जाटों को देखिये, लस्सी, सेर-सेर भर की रोटियाँ, चने, सरसों का साग—सब कुछ डकार जाते हैं।

मनमोहन—सरसों का साग! लस्सी! मुझे सरसों का साग बहुत भाता है। एक बार शिकार को जाते हुए गुड़गाँव के नज़दीक हमारी कार खराब होगई, रात होने को थी, हम पास के एक गाँव चले गये, वहाँ के लोगों ने हमारी कार को धकेल कर एक पेड़ के नीचे खड़ा कर दिया—खपरैल की एक झोंपड़ी में

हमने रात काटी, हम थके माँदे-भूखे। वहाँ हमें भुट्टे, मकई की रोटी और सरसों का साग खाने को मिला। मुझे वह सरसों का साग उम्र भर याद रहेगा!

टैलीफ़ोन की घंटी बजती है। शांता दौड़कर रिसीवर उठाती है।

शांता—मामाजी!—जी! —अच्छा!—क्या कहा आपने?—आप नहीं आ रहे?—क्यों?—अच्छा—हैं?—अच्छा!

टैलीफ़ोन रख देती है।

मामाजी नहीं आ रहे।

प्रोफेसर—(हँसकर) फिर तेरा गिफ़्ट नहीं आ रहा न! और तुझे मामाजी से क्या दिलचस्पी!

शांता—वाह, आप मुझे ऐसी वैसी समझते हैं? मामाजी बड़े अच्छे हैं, उन्होंने मेरे गिफ़्ट का वायदा टैलीफ़ोन पर ही कर लिया है।

प्रोफेसर—(उठते हुए) आइये, खाने को देर हो रही है।

सभी उठकर मेज़ के इर्द-गिर्द बैठते हैं। बैरे ट्रे उठाये खाना परोसते हैं।

पर्दा गिरता है

दूसरा अंक

पहला दृश्य

जयदेव का स्टूडियो

सामने की दीवार में एक खिड़की जिसके शीशे हल्के आसमानी रंग के पर्दों से ढके हुए हैं। इस खिड़की के दाईं ओर शिव जी की मूर्ति का चित्र और बाईं ओर ऐप्सटाइन की प्रसिद्ध मूर्ति 'ऐडम' का चित्र टंगा हुआ है।

बाईं दीवार में एक दरवाजा गोल कमरे को है और दाईं दीवार म एक दरवाजा किसी दूसरे कमरे को।

कमरे की सजावट एक सफल कलाकार की सुरुचि का परिचय देती है—कुछ पुस्तकें, एक चीनी फूलदान, खड़िया मिट्टी की एक मूर्ति, पैडेस्टल लैम्प, और बायें कोने में जरा आगे एक अत्यन्त मोटी

स्त्री को मूर्त्ति, जिसके सभी अंग-प्रत्यंग बड़ी बड़ी गोलाइयों में गढ़े गये हैं।

दाईं ओर एक कुरूप लड़की की पत्थर की अपूर्ण मूर्ति पड़ी है, उसके समीप रूपा, मॉडल, बैठी है—दुबली-पतली, काल-कलूटी, खुरदरे अस्तव्यस्त बाल, सूखे गाल, मोटे ओठ आँखें भयानक रूप में स्थिर। जब पर्दा उठता है तो दीवार घड़ी में चार बजे हैं। कमरे की चीजों और रूपा की मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है जैसे जयदेव काम करता करता अभी उठकर किसी दूसरे कमरे में गया है। रूपा कातर सहमी दृष्टि से अपनी अपूर्ण मूर्ति की ओर देखती है और फिर बायें कमरे की ओर—आध मिनट तक वह इसी प्रकार स्तब्ध सी बैठी रहती है।

दाईं ओर से नत्थू, जयदेव का बूढ़ा नौकर आता है और उसे यों बैठा देखकर आश्चर्य प्रकट करता है और फिर क्रुद्ध होता है।

नत्थू—अरी, तू कौन है री? अब भिखमंगों को भी बाबू के कमरे में घुस आने की हिम्मत हुई! चल निकल यहाँ से।

रूपा—(अनुनय करते हुए) मुझे तो बाबू खुद ही लाये हैं।

नत्थू—तुझे, चोट्टी को? कौन जात है तू?

रूपा—(चुप)।

नत्थू—कमज़ात, तू यहाँ आई कैसे ?

रूपा—हमारे डेरे में तीन जने भूख से मर गये। गली के कोने में घूरे पर मैं एक जूठी पत्तल चाट रही थी, जब बाबू मोटर में उधर से गुज़रे।

नत्थू—(घृणा से) मरभुखी !

रूपा—उन्होंने जब मुझे पत्तल चाटते देखा तो मोटर रोक कर मुझे बुलाया। मैं डर के मारे अपनी जगह से न हिली। मेरा मुँह मठे से सना हुआ था। उन्होंने मुझे मोटर गाड़ी में बैठने को कहा—

नत्थू—ऊँह मोटर गाड़ी !—निकल यहाँ से चुड़ैल। कोई चीज़ उठायेगी क्या ? निकल यहाँ से।

रूपा—पर बाबू अभी यहाँ से गये हैं, सवेरे से यह पत्थर काट रहे हैं।

नत्थू—अरी मर यहाँ से, बक बक किये जाती है।

रूपा उठ खड़ी होती है। बाईं ओर से जयदेव अन्दर आता है।

जयदेव—ए नत्थू, यह क्या करता है ?

नत्थू—जी, यह कोई चोट्टी यहाँ घुस आई है।

जयदेल—मैं ही इसे बिठा गया था।

नत्थू—काहे बाबू ?

जयदेव—मैं इसकी मूर्त्ति बना रहा हूँ, देखता नहीं ?

नत्थू—(घृणा से) इसकी मूरत ?

जयदेव—हाँ।

नत्थू—पहले तो आप अच्छी, सुन्दर मूरतें बनाते थे, इस मूरत को कौन खरीदेगा ? और यह कंगाल आप को पैसे कहाँ से देगी ?

जयदेव—बड़े लोगों की मूर्त्तियाँ बनाकर मैं उनसे पैसे लेता हूँ, परन्तु इसकी मूर्त्ति बनाकर मैं इसे पैसे दूँगा। जा, दूसरे कमरे में बैठ, मैं काम कर रहा हूँ।

नत्थू जाता है।

जयदेव—(रूपा को) तू अपनी जगह से हिल क्यों गई ?

रूपा—मुझे उसने उठा दिया।

जयदेव—ले, बैठ यहाँ पर।

वह उसको बैठाता है।

मुँह ज़रा ऊपर उठा कर और गर्दन......हाँ ऐसे-
ओठ ज़रा खोल कर।

वह काम शुरू करता है।

रूपा—बाबू—गर्दन ऐसे रखी हुई है—और भूख के मारे मेरे पेट में बल पड़ गये हैं—सुबह कुछ खाया नहीं।

जयदेव—इसी तरह बैठी रह—बस इसी तरह। मैं अपनी मूर्त्ति में ऐसी ही भूखी आँखें दिखाना चाहता हूँ—ओठों पर भूख से जमी हुई पपड़ी—युग से चलती आई भूख। इस पत्थर के टुकड़े में मुझे तेरी मूर्त्ति उभरी हुई दिख रही है, भूख दिख रही है—स्थिर

और ठहरी हुई भूख, निगल लेने वाला विचार, परछाईं······किन्तु······तुझे ऐसे ही बैठे रहना पड़ेगा, ताकि मेरी छेनी तेरे ओठों पर जमी हुई भूख को पत्थर पर अंकित कर दे और तेरे ओठों की पपड़ी अमर हो जाये।

वह काम करता है।

रूपा—बाबू, सुबह से एक कर बैठने से मेरी गरदन अकड़ गई है। और भूख से पेट पीठ एक हो गये हैं—इसलिये मैं......मैं......

जयदेव—हाँ, चेहरे पर यही भाव हों। जो चीज़ मैं मुद्दतों से ढूँढ रहा था, आख़िर मज़दूर बस्ती के गंदे ढेरों में मिल गई। अंधेरी और सीड़ वाली गली के एक कोने में—कुरूपता, जिस में युग-युगान्तरों से चली आ रही भूख ओठों की पपड़ियों में समा गई है। तू इसी तरह बैठी रह।

वह गर्दन ऊपर उठाये उसी तरह बैठी रहती है और जयदेव पत्थर तराशता है।

हाथ यहाँ से उठा ले और दूर को देखती रह इसी तरह। हाँ, ठीक। तूने गर्दन फिर नीची करली... तेरी गर्दन की तनी हुई नसें ढीली पड़ गईं। उभरी हुई नसें पत्थर पर कितनी अच्छी लगती हैं।

रूपा—मैं तो थक गई।

जयदेव—अच्छा—अब तू जा, और यह ले आज की मजदूरी के छः आने। अगर यह मूर्त्ति ठीक बन गई तो मैं तुझे इनाम दूँगा।

रूपा उसकी बात पर ध्यान न देकर, थकी हुई उठती है, कपड़े उठाती है और पैसे लेकर दाईं ओर के दरवाज़े से निकल जाती है। जयदेव मूर्त्ति की ओर लौटता है और छेनी से उसे ठीक करता है। बाएँ दरवाज़े पर खट-खट।

जयदेव—कौन ?

सुवीरा भीतर आती है।

आइए, आइए

सुवीर—मैं यों ही चली आई। आप ने उस दिन कहा था कि

किसी भी समय चली आया करो—इसलिये आज—शायद मेरे आने पर आपके काम में बाधा पड़ जाये, मगर मैं बाधा नहीं डालूँगी। आप बैठकर काम कीजियेगा, मैं आपकी गैलरी देखूँगी। किसी के घर पहले दिन जाकर मैं चुप नहीं बैठ सकती। उसकी किताबें या अल्मारियाँ देखती रहूँगी। मेरे इस भांति टहलने से आपके काम में बाधा तो नहीं पड़ेगी ?

जयदेव—नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं काम समाप्त कर चुका हूँ। यों ही गर्दन की नसें ठीक कर रहा था।

सुवीरा इधर उधर टहलती है और फिर एक मूर्त्ति के सामने खड़ी हो जाती है।

सुवीरा—आप बहुत अद्भुत मूर्त्तियाँ बनाते हैं ?

जयदेव—क्यों ?

सुवीरा—यह अनोखी मूर्त्ति है, हाथ लगाने से कितनी कोमल जान पड़ती है।

जयदेव—यही तो इसकी खूबी है।

सुवीरा—पत्थर की मूर्ति में लोग लकड़ी या ताँबे की झलक देना चाहते हैं। पत्थर को तराश कर उसमें कोमल अंगों की समता दिखलाना चाहते हैं, किन्तु पत्थर का अपनापन भी तो मूर्त्ति में अवश्य दिखाना चाहिए—पत्थर का खुरदरापन, उसका ऊबड़ खाबड़ पन। इस हिसाब से तो प्रोफेसर साहब की पत्नी की मूर्त्ति अच्छी बनी है। उसमें जीवन की झलक है। जब वह जीवित थीं, मुझे बहुत चाहती थीं। सदा यही कहती थीं कि मैं उनकी असली बेटी हूँ। मुझे भी वह अपनी ही माँ लगती थीं।

जयदेव—उन में माँ का हृदय था। स्त्री की सब से बड़ी देन, बड़ा आकर्षण, और सौंदर्य मातृत्व है। जिस स्त्री में माँ बनने की शक्ति नहीं, वह अधूरी है। उससे कभी प्यार के सोते नहीं फूट सकते। जो स्त्री माँ जैसा अनूठा प्यार दे सकती है, उसमें अनोखा आकर्षण होता है।

सुवीरा—इसी लिये प्रोफेसर साहब उनको इतना प्यार करते थे।

जयदेव—स्त्री सबसे बड़ी कलाकार है । वह मूर्त्तिकार की भांति पत्थर की मूर्त्तियाँ नहीं बनाती, जीवित मूर्त्तियाँ बनाती है । ये मूर्त्तियाँ उसकी आन्तरिक अभिलाषा हैं, हार्दिक अनुभूति हैं······उसके सफल सपने हैं ।

सुवीरा—फिर आप तो उस स्त्री को प्यार करेंगे, जो मां हो ।

जयदेव—तुम हँस रही हो, किन्तु यह बात बिल्कुल ठीक है ।

सुवीरा दूसरी मूर्त्ति की ओर संकेत करती है ।

सुवीरा—यह, इतनी मोटी स्त्री की मूर्त्ति क्या आपने इसी विचार से प्रेरित होकर बनायी है ?

जयदेव हाँ ।

सुवीरा मूर्त्ति के अंग इतने गोलाकार······इतनी मोटी और गोल ! आप इसे कला कहते हैं, यह तो कला

का विकृत रूप है।

जयदेव—मैं स्त्री को सदा गोलाइयों में ही देखता हूँ। पहली गोलाई उसकी गर्दन से आरम्भ होती है, और बल खाती हुई उसके कंधों से हो कर नाभी में जा कर गुम हो जाती है। भारतीय स्त्री में यह गोलाइयाँ अंग्रेज़ स्त्री से अधिक होती हैं। भारतीय स्त्री, जैसी कि तुम हो—तुम्हारे ये कन्धे, यह गर्दन जिस पर अलकों की एक सुनहरी लट, मानो दूधिया भुट्टे की झालर हो, कितनी सुन्दर, पूरी एक मॉडल!

सुवीरा—आप कहीं मुझे मॉडल तो नहीं समझ रहे?

जयदेव—नहीं।

सुवीरा–कलाकारों का कुछ एतबार नहीं।

जयदेव—क्यों?

सुवीरा—वह किसी भी चीज़ को मॉडल समझ लें!

जयदेव—मैंने तुम्हें पहले तो मॉडल नहीं समझा था, किन्तु तुम्हारे कहने पर समझने लगा हूँ।

सुवीरा—मेरे कहने पर?

जयदेव—हाँ, तुम्हारे मन में जो विचार छिपा हुआ था, वह भय के रूप में प्रकट हुआ है—तुम्हारा मॉडल बनने

का ख्याल, जो सामने आने से डरता था।

सुवीरा—किन्तु मैं मॉडल बनना नहीं चाहती। मेरे मन में तो तनिक भी ख्याल नहीं।

जयदेव—अवश्य है।

सुवीरा—नहीं।

जयदेव—ज़रूर है। अच्छा सुवीरा, अगर मैं तुम्हारी मूर्त्ति बनाऊँ, तो ?—तुम्हारा मुँह, तुम्हारी उँगलियाँ, तुम्हारी अलकें, मुझे अजन्ता की किसी मूर्त्ति की याद दिलाती हैं।

सुवीरा—हिश।

जयदेव—तुम्हारा मुँह अलोरा और अजन्ता की मूर्त्तियों जैसा है——तुम्हारे अधखुले ओठ—

सुवीरा—हिश।

जयदेव—यह बार बार 'हिश' क्या ?

सुवीरा—यों ही।

जयदेव—बुरी आदत है। छोड़ देनी चाहिये।

सुवीरा - कोशिश करूँगी।

बाईं ओर से नत्थू आता है

नत्थू—जी, सेठ बिहारीलाल गोल कमरे में आपकी राह देख रहे हैं।

जयदेव—अच्छा।

नत्थू जाता है

सुवीरा—यह सेठ बिहारीलाल कौन हैं ?

जयदेव—कपड़े का बहुत बड़ा व्यापारी। इसे भी मूर्त्ति बनवानी है।

सुवीरा—मूर्त्ति ?

जयदेव—हाँ, सिटिंग देने का समय नियत करने के लिये आया है। इसने चार लाख रुपये दान करके एक अस्पताल बनवाया है। अस्पताल के बड़े कमरे के सामने इसकी मूर्ति रखी जायेगी।

सुवीरा—क्यों ?

जयदेव—इस लिये कि.........

सुवीरा—इस लिये कि अस्पताल में आने वाले रोगी, तपेदिक की शिकार स्त्रियाँ, पीले बच्चे सब इसको देख कर याद रखें कि उनके कोढ़ का, उनकी बीमारी और भूख का दोषी यह सेठ है—यह सेठ जो हमारे

समाज के आर्थिक शरीर पर जोंक बन कर चिमटा है—यही न ?

जयदेव—तुम हर बात में अपनी आर्थिक जाँच की खुर्दबीन लगाये रहती हो।

सुवीरा—तो क्या आपकी कला की रंगीन ऐनक चढ़ाये रहूँ, ताकि इस में से हर चीज़ के रंग बिरंगे रूप देख सकूँ ?

जयदेव—तुम समझती हो कि मैं इस सेठ की परवाह करता हूँ ?

सुवीरा—अवश्य।

जयदेव—तनिक भी नहीं।

सुवीरा—इस भांति इसे इन्तज़ार में बिठाये रखने से आपका मोल बढ़ता है-बाज़ार में अपनी वस्तु को बेचने की चतुरता, सीधा सादा हिसाब। इस तरह उसे बिठा कर आप अपना मोल बढ़ाना चाहते हैं। आप अवश्य उसकी परवाह करते हैं। अच्छा, मैं चलती हूँ। नहीं तो यह आपके सेठ बिहारीलाल........

जयदेव—ऊँची कला की उन्नति के लिये कलाकार को रुपये की आवश्यकता है।

सुवीरा—फिर और उन्नति के लिये और रुपये की आवश्यकता

होगी। यह चक्कर कभी समाप्त नहीं हो सकता। अच्छा आप कला को उन्नत करें। मैं चलती हूँ। यह बिहारीलाल सेठ भी आपकी उन्नत कला का नमूना बनेगा—क्यों?

जयदेव—हिश!

सुवीरा बाईं ओर से बाहर जाती है। जयदेव एक मिनट उसकी ओर देखता रह जाता है। फिर वह गोल कमरे में चला जाता है।

पर्दा गिरता है

दूसरा दृश्य

जयदेव का का स्टूडियो

एक छोटी सी तिपाई पर दो खाली प्याले और चायदानी रखी है, मानो जयदेव और सुवीरा चाय पोकर बातें कर रहे हों।

कमरे में धीमा प्रकाश है—साँझ का धुंधलका। जब परदा उठता है, सुवीरा और जयदेव दिलचस्प बहस में डूबे हुए हैं।

जयदेव—इस कलाकार के उस सुन्दर चित्र का मॉडल वह कुरूप लड़का था जो खरल में उसके रंग पीसा करता था। किन्तु वास्तविक मॉडल वह लड़का नहीं—वास्तविक मॉडल तो कलाकार के मस्तिष्क में था—यहाँ मस्तक में।

सुवीरा—कई लोग कालिख में लिपे पुते लड़के में भी स्त्री का यौवन ढूँढ लेते हैं।

जयदेव—दृष्टिकोण का अन्तर है।

सुवीरा—ऐसे कलाकार की आँखों पर झिल्ली चढ़ी रहती है। वह कुरूप में भी सौंदर्य देख लेता है, वह सौंदर्य जो अन्दर से सड़ गल रहा है। इसी तरह का एक और कलाकार मुझे सदैव याद रहेगा।

जयदेव—कौन ?

सुवीरा—बंगाल अकाल पर वह चित्र बनाना चाहता था। बेशुमार लोगों ने इस पर कहानियाँ लिखीं, कवितायें रचीं। वह भी चित्र बनाने के लिये बंगाल जाना चाहता था, किन्तु वह न जा सका। मेरे साथ बातें करते हुए वह कहने लगा "हाय, मैंने कितना अच्छा मौका गँवा दिया। बंगाल की भूख पर कोई चित्र न

बना सका। वह मेरा 'मास्टर पीस' होता—किन्तु अब तो सुना है, लोग फिर गाँवों को लौट गये हैं और अकाल का जोर कम हो गया है—मैंने एक सुनहरा मौका हाथ से जाने दिया—अब ऐसा मौका कब हाथ आयेगा !" मुझे इस कलाकार की स्वार्थ-भरी लालसा से डर लगने लगा।

जयदेव—कई बार कलाकार को निर्दयी बनना पड़ता है। उसे तटस्थ होकर चीज़ों को देखना पड़ता है।

सुवीरा—ऐसे कलाकार मूर्ति बनाते बनाते, चित्र खींचते खींचते कविता लिखते लिखते टेक्निक के शिखर पर पहुँचने की आकांक्षा में भावनाशून्य हो जाते हैं—भावनाएँ जो प्रत्येक वस्तु को रूप देती हैं, जमी हुई चीज़ों को पिघलाती और चेतना देती हैं।

नत्थू बाईं ओर से चुपचाप भीतर आता है। कोने में रखे पैडेस्टल लैम्प को जलाता है और घड़ी में चाबी देकर ठीक करता है। इस समय साढ़े सात बजे हैं वह धीरे से प्याले और चायदानी ट्रे में उठाता है और चला जाता है।

जयदेव—सुवीरा, मेरे इस कला-मन्दिर में बहुत सी लड़कियाँ आईं, बहुत सी स्त्रियाँ, बहुत लोग···सभी ने मेरी प्रशंसा की, मेरी कला की सराहना की। कुछ समय बाद यह सराहना रोज़ का ढर्रा हो गया—ऐसा ढर्रा, जिसकी लगातार चोटों से मेरी अपने को जाँचने की चेतना सुन्न हो गई—किंतु तुमने इन्हें जगाया—तुम में समय को जीतने वाली सूझ है। पहली ही भेंट में तुमने परायेपन की दीवारों को ढहाकर नई दीवारें उठा लीं—अरे, तुम बार बार पैर से ज़मीन क्यों कुरेद रही हो?

सुवीरा—यों ही।

जयदेव—कुछ सोच रही हो क्या?

सुवीरा—नहीं।

जयदेव—क्या सोच रही हो?

सुवीरा—कुछ भी तो नहीं।

जयदेव—क्या मेरे बारे में सोच रही हो?

सुवीरा—नहीं।

जयदेव—तुम ज़रूर मेरे ही बारे में सोच रही हो।

सुवीरा—आपको यह वहम कैसे हो गया। अच्छा, मान

लीजिये कि मैं आप ही के वारे में सोच रही हूँ—बताइये तो, जो मैं सोच रही हूँ, वह ठीक है ?

जयदेव—मैं क्या जानूँ, स्त्री के विचारों को कोई नहीं जानता।

सुवीरा—मैं वताये देती हूँ।

जयदेव—वताओ !

सुवीरा—मैं यह सोच रही हूँ कि आप यह मूर्त्तियाँ क्यों वनाते हैं।

जयदेव—मूर्त्तियाँ–वाह्–एक कलाकार कला के बिना कैसे रह सकता है ?

सुवीरा—क्यों ?

जयदेव—कला उसकी आत्मा का भोजन है।

सुवीरा—अर्थात् यह आपकी रोटी है।

जयदेव—नहीं, रोटी नहीं, वल्कि इसलिये कि कलाकार अपना विकास चाहता है—अपने भीतर की प्रेरणाओं को वाहर लाना चाहता है—वह प्रेरणायें, वह विचार किसी भी रूप में वाहर आना चाहते हैं।

सुवीरा—किस लिये ?

जयदेव—कला के लिये।

सुवीरा—आपकी कला किस लिये है—प्रदर्शिनी के लिये ?

जयदेव—नहीं, कला प्रदर्शिनी के लिये नहीं, कला सदा अपनी दबी भावनाओं के विकास के लिये है।

सुवीरा—जयदेव बाबू, पत्थर की जड़ अवस्था में से स्वप्न व जागृत करने वाला मूर्त्तिकार ठीक एक कलाकार है, किन्तु यदि वह समाज पर जमे हुए रीति-रिवाजों के परतों को खोद कर उसके हृदय को नहीं छूता, जनता की रूढ़ियों के पर्वत को तोड़ कर बन्दी आवेगों को प्रवाहित नहीं करता, तो वह बड़ा कलाकार नहीं।

जयदेव—क्या अलोरा और अजंता के मूर्त्तिकार बड़े कलाकार नहीं थे?

सुवीरा—वह अवश्य बड़े थे। उस कला पर किसी एक कलाकार की छाप नहीं, बल्कि वह उस समय के कलाकारों का सम्मिलित प्रयास है—कई बार एक बड़ी दीवार पर खुदे चित्र को पूरा करने में दो दो पीढ़ियाँ बीत जातीं। उस समय की असलियत को इन कलाकारों ने चित्रित किया—इसी में इनकी महानता है। आप क्यों पुराने ढंग से मूर्त्ति बनाना चाहते हैं? क्यों पीछे की ओर भागते हैं? क्यों गड़े मुर्दे उखेड़ते हैं?

वर्तमान की असलियत से मुँह मोड़ कर क्यों मध्यकाल की गुफाओं में शरण लेते हैं ?

जयदेव बेचैन अवस्था में टहलता है

जयदेव—तुम्हारी बातें कभी कभी मुझे बेचैन कर देती हैं—मन कुछ अजीब ढंग से दोचित्ता हो जाता है, जैसे कोई कुल्हाड़ी से मेरी चेतना के दो टुकड़े कर देता हो। तुम्हारी बातें आधी ठीक आधी ग़लत लगती हैं—आधा दिल बदलने को रूजू होता है और आधा अपनी बात पर अड़ा रहना चाहता है। तुम एक हलचल सी पैदा कर देती हो।

वह स्टेज के पिछवाड़े की खिड़की खोजता है और वहीं खड़ा हो जाता है। खिड़की से होकर वायलिन के मृदु गम्भीर स्वर आ रहे हैं।

जयदेव—यह वायलिन सामने के क्वार्टर में म्यूज़िक मास्टर बजा रहा है—विहाग—साँझ के समय बहुत अच्छा लगता है। इसमें बहुत दर्द है—बेचारा म्यूज़िक मास्टर !

सुवीरा—क्यों ?

जयदेव--इसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली गई, एक ठेकेदार के साथ । इस ठेकेदार की लड़की को यह म्यूज़िक मास्टर संगीत सिखाता था—ग़रीबी पाप है । वायलिन पर गज़ फेरने से मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई मेरी गर्दन पर ही गज़ फेर रहा हो । रोम रोम में सनसनी सी दौड़ जाती है । जीवन में कुछ घटनाएँ बहुत दु:खी करने वाली होती हैं ।

सुवीरा उठ कर खुली खिड़की के पास जयदेव के निकट जा खड़ी होती है ।

सुवीरा—झुटपुटा हो जाने से बाहर अन्धेरा अन्धेरा सा छा गया है । यह खिड़की के पास वाला पेड़ काहे का है ?

जयदेव—शिरीष का ।

सुवीरा--शिरीष ?

जयदेव--हाँ, इसके फूल बहुत नरम होते हैं । पतझड़ में इसकी महक बहुत फैलती है ।

सुवीरा—यह क्या उड़ा था, चमगादड़ सा ?

जयदेव—एक पत्ता—सूखा पत्ता।

सुवीरा—पेड़ कितना काला दीख रहा है– मुझे आये हुए बहुत देर हो गई—पूरे चार घण्टे—प्रोफेसर साहब मेरी राह देखते होंगे।

जयदेव—मैं छोड़ आऊँगा।

वायलिन के स्वर गम्भीर हो जाते हैं। वह दोनों एक मिनट तक खड़े खिड़की के बाहर देखते रहते हैं।

पर्दा गिरता है

———

तीसरा अंक

प्रथम दृश्य

प्रोफेसर बत्रा का घर। वही कमरा जो पहले अंक में था। सन्ध्या के चार बजे हैं। मेज़ के इर्द-गिर्द प्रोफेसर, शांता, मनमोहन, सुवीरा मिस्टर और मिसेज मेहता और सेठ गोविन्द प्रसाद बैठे चाय पी रहे हैं। जब पर्दा उठता है, सभी खाने और परस्पर वार्तालाप में व्यस्त हैं। कभी कभी हंसी ठठा से सारा कमरा गूँज उठता है।

मेहता—जयदेव की नयी मूर्त्ति कमाल है। आर्ट तो बस खत्म है। कुरूप लड़की की मूर्ति ने सब को मात कर दिया।

मनमोहन—लव्ली !

मिसेज़ मेहता—मुझे मूर्त्तियों से चित्र अधिक भाते हैं। चित्रों के रंग होते हैं, जान होती है, रंग बिरंगे होते हैं।

प्रोफेसर—रंगों के साथ बच्चों को बहुत प्यार होता है। यह बच्चों का टेस्ट है।

मिस्टर मेहता—मूर्त्ति में अस्तित्व का पूरा पूरा अहसास होता है। चित्र तो परछाईं जान पड़ते हैं। मूर्त्ति में तीन डाइमेंशन्स हैं। चित्र में सिर्फ दो।

मनमोहन—मूर्त्ति के साथ मुझे किसी सुन्दर चेहरे का ख्याल आता है, इसलिए उर्दू के कवि अपनी प्रेमिका को बुत कहते हैं।

मिसेज़ मेहता—मगर इस कुरूप लड़की की मूर्त्ति तो निरी पत्थर है—भूख का रूप। देखा आपने उसकी फटी हुई आँखें, पपड़ाये ओंठ, गर्दन की तनी हुई नसें और खुले हुये जबड़े। मुझे तो इस मूर्त्ति से डर लगता था।

मनमोहन—यही तो जयदेव का कमाल है। भूख का सही रूप। उसने हमारे देश की भूख का बखान किया है। (एक रस गुल्ला मुंह में डाल कर) इस मूर्त्ति को देख कर देश की निर्धनता, मोटे सेठों की चोर बाज़ारी से सतायी जनता का ख्याल आता है।

सेठ गोविन्द प्रसाद—कुरूप लड़की को इस तरह गढ़ना जयदेव का ही काम है।

मेहता—इसीलिये जयदेव को प्रदर्शिनी का फर्स्ट प्राइज़ मिला है। लोग आखिर आर्टिस्ट के हुनर की कदर करते हैं।

सेठ—आर्टिस्ट की कदर है विलायत में। यही मूर्त्ति विलायत में होती, तो लोग जयदेव को कन्धों पर उठा लेते।

एक ही इनाम उमर भर खाने के लिये काफी होता।

सुवीरा—हिन्दुस्थान को कला की समझ हो भी कैसे सकती है, जब कि यहाँ लोगों को हमेशा पेट की ही चिन्ता रहती है।

सेठ—हमारे लोग इतने भूखे नहीं. जितने वह दिखाई देते हैं। हमारे लोगों को तो बस शोर मचाने की आदत है। हर बात पर हड़ताल, हर बात पर नारे और भूख हड़तालें। भूख-हड़ताल तो एक मज़ाक हो गया है। जो भी ऐरा गैरा उठता है, भूख-हड़ताल का नारा लगा कर रोटी छोड़ देता है।

मेहता—यह भूख-हड़ताल सब पाखंड है। छिपे छिपे बिस्कुट, दूध और फल सब कुछ पहुँचता रहता है।

सेठ—जो हमारे देश में पाखंड की बहुत पूजा है। मेरे जैसा कोई भूख-हड़ताल करे तो गवर्नमेंट उसकी रत्ती भर परवाह न करे।

शांता—आप रसगुल्ला लेंगे ?

सेठ—नहीं।

शांता—लीजिये न।

सेठ—(लेते हुए) धन्यवाद।

मिसेज़ मेहता—पकौड़े बहुत मज़ेदार हैं।

शांता—मैं ने ही बावर्ची को बनाना सिखाया था।

प्रोफेसर– कालेज में इसने कुकिंग ली थी न।

मनमोहन—कुकिंग भी एक आर्ट है।

सेठ—हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री का कलाभवन उसकी रसोई है।

शांता—और रुपये, नोटों और बहियों से भरी हुई गद्दी आपका कला-मन्दिर है·····क्यों है न ?

सभी हँसते हैं।

प्रोफेसर—अगर टके जमा करने वाली हर जगह को कला-मन्दिर कहने लगें तो हर गोदाम, हर दूकान कला-मन्दिर हो जायगी।

सुवीरा—हमारे कलाकारों के कला मन्दिर भी तो दूकानें ही हैं।

शांता—लेकिन जयदेव का कला मन्दिर कोई दूकान नहीं।

सुवीरा—बहुत बड़ी और सफल दूकान है और क्या वैसे ही उन्हें फर्स्ट प्राइज़ मिल गया।

मेहता—फर्स्ट प्राइज़ तो उनकी कला के लिये है।

सेठ—इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि वह

हमारे समय के सब से बड़े और ऊँचे कलाकार हैं;

मनमोहन--इस बात को तो सभी मानते हैं ।

प्रोफेसर—सुवीरा तुम्हें उनके बड़े कलाकार होने में शक है ?

शांता—नहीं पिता जी, सुवीरा हम सबसे उनकी अधिक प्रशंसा करवाना चाहती है, इसी लिये वह इस बात को बार बार छेड़ती है ।

शांता के मुँह पर चुहल की झलक है और सुवीरा पहले की तरह गम्भीर बैठी है ।

सुवीरा—जब उन्हें फर्स्ट प्राइज़ मिला है और उन्हें बड़ा कलाकार कह रहे हैं, तो उनके बड़ा कलाकार होने में शक क्या !

सेठ—जी भला यह भी कोई बहस की बात है ?

प्रोफेसर –मेहता साहब और कितने दिन दिल्ली ठहरेंगे आप ?

मेहता—बस एक दो दिन और ।

प्रोफेसर—इतना जल्दी ?

मिसेज़ मेहता—दिल्ली में खर्च बहुत होता है । एक महीने में दो तीन महीने की तनख्वाह उड़ गई । इस लिहाज़ से नंगल बहुत अच्छी जगह है ।

मेहता—नंगल बहुत फर्स्ट कलास जगह है । पिकनिक के लिये शानदार साइट । आयेंगे क्या कभी ?

शांता--मैं तो जरूर आऊँगी ।

सेठ--सुना है कि नंगल में बहुत ठेके बटे हैं । गवर्नमेंट ने इस दफे बहुत ऊंचे रेट दिये ।

मनमोहन--छोड़िये सेठ जी । शुक्र कीजिये कि आपने इस दफे वहाँ कोई भट्टा नहीं लगाया, नहीं तो इस बार इतनी बारिश हुई कि भगवान न करे जैसे कि कहावत है आपका भट्टा सचमुच ही बैठ जाता ।

मेहता—फिर-नंगल आयेंगे न आप ?

मनमोहन--मौका मिला तो जरूर आयेंगे ।

मेहता—विलायत तो आपको अप्रैल में जाना होगा । बस उसके पहले मार्च के शुरू में चले आना । बहुत अच्छा मौसम होता है । आयेंगे तो मुर्गाबी का शिकार खेलायेंगे ।

मनमोहन—वहाँ पर कोई झील है !

मेहता—बहुत बड़ी झील-आपका दिल्ली लौटने को दिल ही नहीं चाहेगा ।

मनमोहन—हाँ, शांता को पेंटिंग का शौक है। वहाँ से जितने सीन्स चाहे ले आये।

सेठ—(खाते हुए) पकौड़े बहुत चटपटे हैं।

शांता—पूरन, एक प्लेट पकौड़े और लाओ।

सेठ—बस भाई बस, अब किसके पेट खायें।

नौकर समाचार-पत्र लेकर आता है और मेज के पास रखी तिपाई पर रख देता है। सब चाय पीते हैं; मनमोहन समाचार-पत्र उठा कर पढ़ता है।

मेहता—क्या न्यूज है ?

सेठ—ये छापा वाले योंही चीखते रहते हैं। समाचार क्या होंगे, यही कि कोई पकड़ा गया, फिर छोड़ दिया गया। बस हमारे देश में तो पिछले तीस साल से यही धंधा चल रहा है।

मेहता—अखबार वालों की चाँदी है।

मनमोहन—(समाचार पत्र देखकर) विम्बलडन में टेनिस फाइनल में श्रोडर जीत गया।

मेहता—कौन जीत गया।

मनमोहन—टेड श्रोडर।

मेहता—अच्छा कल की रेस भी देखो। कौन घोड़ा दौड़ रहा है?

मनमोहन—इन अखबार वालों की रिपोर्ट पर किसी घोड़े पर लगा न बैठना, जॉकी और बुकी मिले रहते हैं।

मेहता—मैं तो जब तक घोड़े की नस्ल पूरी तरह नहीं जान लेता, कभी रेस नहीं खेलता।

मनमोहन—अब रेस का मज़ा ही क्या रह गया। अंगरेज़ के साथ डान्स, क्लब लाइफ और रेस सभी चीज़ें चली गईं। अब तो रेस कोर्स सिर्फ चार सौ बीस और लूटने के अड्डे हैं।

सेठ—अंगरेज़ चालाक था, पर बहुत ईमानदार; यह बात हमने बिज़नेस में देखी। चालीस गज़ का थान लिखा होता, सवा चालीस निकलता, मजाल है जो पौने चालीस निकले।

प्रोफेसर—अंगरेज़ बिज़नेस में ईमानदार और राजनीति में बेईमान है। यह उसकी कौम का गुण है।

मिसेज़ मेहता—छोड़िये अखबार, चाय का मज़ा खराब कर दिया। लीजिये यह क्रीम रोल खाकर देखिये।

मेहता—मुझे क्रीम रोल बिलकुल अच्छा नहीं लगता, मुँह में जैसे साबुन घुल गया हो।

मि० मेहता—असली मैदा आज कल कहीं मिलता भी तो नहीं।

मेहता—ब्लैक में हर चीज़ मिल सकती है।

सेठ गोविन्दप्रसाद—अजी राम राम कहो, कांग्रेस बुरी तरह ब्लैक के पीछे पड़ी है।

मेहता—अजी छोड़िये, कांग्रेस वाले खुद ब्लैक करते हैं। आप अखबार नहीं पढ़ते ?

प्रोफेसर—(मनमोहन से) दिखाना ज़रा अखबार।

मनमोहन—एक न्यूज़ पढ़ रहा था।

प्रोफेसर—क्या ?

मनमोहन—(पढ़ते हुए) सुन्दर जो बहुत दिनों से हरगोपाल क्लाथ मिल्स की हड़ताल के सिलसिले में फरार था और जिसके विरुद्ध और भी कई आरोप थे।

सुवीरा—हाँ, हाँ, तो ?

मनमोहन—एक ताँती के घर में पकड़ा गया।

सुवीरा—पकड़ा गया !

उसके हाथ का चाय का प्याला

छूट जाता है, वह काँपती हुई रुआँसी सी दूसरे कमरे में चली जाती है। सब उसकी ओर आश्चर्य से देखते हैं।

पर्दा गिरता है

दूसरा दृश्य

जयदेव का स्टूडियो

जयदेव ईजाल स्टैंड के सामने खड़ा एक चित्र बना रहा है। घड़ी में संध्या के छः बजे हैं।

सुवीरा बाईं ओर से आती है, उसका चेहरा गम्भीर और तना हुआ है। वह आकर जयदेव के पास खड़ी होजाती है। जयदेव काम छोड़ कर उसकी ओर देखता है।

जयदेव—तुम चुप क्यों हो?

सुवीरा—नहीं तो।

जयदेव—क्या सोच रही हो?

सुवीरा—कुछ नहीं।

जयदेव—मुझसे मिलने आई हो न?

सुवीरा—हाँ, और यह बताने कि मैं कल प्रोफेसर साहब के यहाँ से जा रही हूँ।

जयदेव—(चिंतातुर होकर) क्यों ?

सुवीरा—मैं इस पेड़ की छाया तले सुस्ताने बैठ गई थी, मगर यहीं टिके रहना तो बड़ी भूल होगी—आँखें बन्द किये पड़े रहना, जबकि घटनाएँ लम्बे डग भरतीं मेरे पास से जा रही हैं, बड़ा अपराध होगा।

जयदेव—बात क्या है ? तुम जा कहाँ रही हो ?

सुवीरा—जीवन के उस मैदान में, जहाँ घटनाओं का संघर्ष छिड़ा हुआ है।

जयदेव—निरी भावुकता। तुम्हें कोई न जाने देगा। सुवीरा, तुम्हारे अस्तित्व ने मेरी कला को निखार दिया है। परस्पर समझ के प्रकाश में हम अपना मार्ग भली भांति देख सकते हैं।

सुवीरा—हाँ, यहाँ रह कर अब मैं अपना मार्ग भली भांति देख सकती हूँ—दो मार्ग—दो दिशाएँ—दो दृष्टिकोण। विचारों की इस टक्कर से भड़की चिनगारी के प्रकाश में दोनों दिशाएँ साफ दिख रही हैं, इसलिये मुझे जाना ही होगा।

जयदेव—किंतु यहाँ भी तो तुम काम कर सकती हो।

सुवीरा—यहाँ रह कर मैं उसी ढंग का काम कर सकती हूँ,

जिस ढंग की आप कला पैदा कर रहे हैं।

जयदेव—तुमने मेरी नई मूर्त्ति देखी ?

सुवीरा—हाँ।

जयदेव—कैसी लगी ?

सुवीरा—अच्छा खिलौना है।

जयदेव—क्या कहा ?—जानती हो प्रदर्शिनी में मुझे इस पर प्रथम पुरुस्कार मिला है।

सुवीरा—प्रदर्शिनी का आयोजन करने वाले कुछ ठेकेदार हैं, जो मूर्त्ति को ऐसे ही परखते हैं, जैसे अपने भट्ठे से निकली ईंट को। उनको आप पर कुछ दया आई और आपका मन रखने के लिये उन्हों ने आपके सामने चाँदी के कुछ सिक्के फेंक दिये, आपकी कला की झोली में डाली हुई उनकी भीख जिसे पाकर आप फूले नहीं समाते।

जयदेव—इस भूखी कंगाल लड़की की मूर्त्ति बना कर मैंने देश की भूख और निर्धनता को रूप दिया है। मैंने कुरूपता में से सौंदर्य रचा है, अंधकार में से चाँदनी निचोड़ी है। यह मूर्त्ति मेरी महान कृति है।

सुबीरा—आपकी कला भूख पर पलती है, और इस कला के

पारखी बड़ी बड़ी तोंद वाले सेठ हैं, जो इस भूखी लड़की की कुरूपता, इसकी भयानक फैली हुई आँखें और रक्तहीन बाहें देख कर खुश होते हैं और आपको इनाम देते हैं। चाय पार्टी पर रसगुल्ले और पेस्ट्री डकारते हुए कहते हैं "इस लड़की के पिचके गाल कितने भले लगते हैं, ओठों पर जमी हुई भूख की पपड़ियाँ कितनी सुन्दर हैं, और इसकी गर्दन की उभरी हुई नसें कितनी सजीव हैं ? आपकी कला मजदूरों, निर्धनों और बेघरों के लिए नहीं, बल्कि इन विलास-प्रिय पूँजीपतियों के लिए है, जो भूखों को देखकर पसीजते नहीं, बल्कि मुँह का कौर छीनते हैं।

जयदेव—लेकिन मैंने तो रूपा को आज सवेरे इनाम भेजवाया है।

सुवीरा—इनाम ?

जयदेव—हाँ, मॉडल बनने का इनाम। मैंने उसकी रोजाना की मजूरी से अलावा उसे इनाम भी दिया है।

सुवीरा—आपकी कला और मॉडल में पैसे का रिश्ता है, किसी ऊँची प्रेरणा का नहीं। आप कंगाल बस्ती के कूड़ा-घरों को देखने जाते हैं—समाज के घिनौने गढ़ों को,

धनियों की जूठन और कै को, ताकि इस सड़ान को अपनी कला में दिखा कर फिर उन्हीं धनियों से रुपये उगाह सकें और इस तरह यह मनोरंजक खेल खेलते रहें।

जयदेव—खेल ?

सुवीरा—हाँ, खेल, बहुत बड़ा तमाशा। कला के महल में विलास का अड्डा, अफीम की भांति एक नशा, एक चस्का, आपके लिये इसे छोड़ना बहुत कठिन है।

जयदेव—सुवीरा, यह बातें तुम भावना के आवेश में कह रही हो, किसी विशेष अनहोनी के होने से चिढ़ कर। तुम इन मूर्त्तियों में छिपी कला को नहीं समझ पातीं।

सुवीरा—आपकी इन मूर्त्तियों में कोई भावना नहीं। इनमें पीड़ितों की चीखें पपड़ियाँ बनकर जम गई हैं। तड़पते जीवन की आवाज़ एक चुप्पी में पथरा गई है। इनमें चोटी पर पहुँचती हुई वह हरकत नहीं जो एक तेज़ घूमते चक्र की भान्ति ठहरी हुई प्रतीत होती है और जिसे एक मूर्त्तिकार एक क्षण में जकड़ कर शिला में कैद कर लेता है। आपकी मूर्त्तियाँ निश्चल

हैं—अचल, स्थिर, जड़। आपने मूर्त्तियों को जगाया नहीं, बल्कि सुन्न कर दिया है। आप पत्थर काटते-काटते खुद पत्थर हो गये हैं।

जयदेव—पत्थर ?

सुवीरा—आपकी कला के पौदे कला भवनों के गमलां में पनप सकते हैं, बाहर के तेज़, ठंडे झोंके नहीं सह सकते। आप अपनी श्रेणी के व्यूह में ही रह सकते हैं, इससे बाहिर नहीं जा सकते। (थोड़ा रुक कर) मैंने नाहक़ आपका इतना समय बरबाद किया। मैं चलती हूँ।

सुवीरा नमस्कार कर के चली जाती है। जयदेव खुली खिड़की के पास आधा मिनट खड़ा बाहर ताकता रहता है।

दूसरे कमरे में कुछ शोर सुनाई पड़ता है—नत्थू की आवाज़ और एक औरत के चीखने का शोर। रूपा की माँ उत्तेजित भाव से अन्दर आती है और साथ ही नत्थू।

रूपा की माँ—बाबू कहाँ हैं ?

जयदेव—क्यों ? क्या बात है ?

माँ—यह लो रुपये, जो तुमने सवेरे नौकर से भेजे थे—उसका इनाम—इन रुपयों में रूपा का खून है, यह रुपये, यह सिक्के, यह खून की मोहरें।

जयदेव—रूपा की खून की मोहरें ?

माँ—हाँ—मेरी बच्ची ! जब वह यहाँ से गई तो उसकी साँस उखड़ी हुई थी, कई दिनों से उसे चक्कर आ रहे थे—कल रात में उसे रुक रुक कर साँस आती थी-हमारे पास कोई दवादारू नहीं, कोई डाक्टर वैद नहीं-रात के पिछले पहर वह चल बसी, मेरी बच्ची ! यह लो अपना इनाम, संभालिए--लड़की की हत्या के पैसे मैं नहीं रख सकती-उसका कफ़न बेच कर मैं अपना पेट न भरूँगी।

वह हाथ के रुपये फेंक कर बाहर चली जाती है।

जयदेव—रूपा मर गई-खून की मोहरें—उसकी लाश—उसका कफ़न ! यह रूपा नहीं अलोरा, अजन्ता और

महेंजोदड़ो की मूर्त्तियाँ मर गईं, यूनान और चीन की प्राचीन शिलाओं में खुदी हुई मूर्त्तियाँ मर गईं, मेरे भीतर रोदें और ऐप्सटाइन मर रहे हैं, मैं मर रहा हूँ।

नत्थू—हूँ, रुपये फेंक दिये। मैंने कहा था न कि कमीनों को अन्दर न घुसने दिया करो। देखा आप ने इनका ढंग? यह फल मिला है आप की मेहरबानियों का। आप इन्हें इनाम भेजवाते हैं। लो, यह रक्खा है आप का इनाम।

जयदेव—नहीं नत्थू, यह बात नहीं। मेरी छेनी को अब इस कला-भवन की घुटन में नहीं, बल्कि बाहर झोंपड़ियों, खेतों और मजदूर बस्तियों में कुदाल के साथ मिल-कर काम करना होगा, वहाँ जहां लोग नया जीवन ढालने के लिये नई आग दहका रहे हैं। रूपा की मौत ने कला के दो रास्ते बतला दिये हैं, दो ढर्रे—एक रास्ता अंधी गली में जाकर खत्म हो जाता है, और दूसरा उजाले की ओर जाता है—उजाले की ओर—

वह खिड़की के पास खड़ा बाहर देखता रहता है। पास के घर के वायलिन के स्वर गम्भीर हो जाते हैं।

नत्थू बड़बड़ता हुआ फर्श पर बिखरे रुपये इकठ्ठे करता है।

पर्दा गिरता है

समाप्त